स्त्री-पुरुष समता की भाषा

विकास नारायण राय

सोनिया गांधी बेशक देश की एक प्रमुख राजनीतिक पार्टी की हाइकमान हों, पर एक स्त्री के रूप में उनकी भी हैसियत भारतीय समाज में भला कितनी भिन्न हो सकती है! केंद्रीय मंत्री गिरिराज सिंह की मर्दाने ठहाकों के बीच बेहद चलताऊ ढंग से उन पर की गई नस्लवादी चुटकी के संदर्भ में उन्हें शालीनतावश कहना पड़ा कि टिप्पणी व्यक्ति-विशेष की विकृत मानसिकता की उपज है जिस पर वे चुप रहना चाहेंगी। इसी तरह, स्मृति ईरानी मोदी सरकार की कितनी भी तेजतर्रार मंत्री हों, पर संसद में शरद यादव की छिछोरी भंगिमा को चुनौती दे पाना उनके लिए भी 'मर्दानी' दुनिया के चक्रव्यूह में फंसने जैसा अनुभव रहा।

इस दुनिया में उनके मंत्रिमंडलीय सहयोगी रविशंकर प्रसाद सदन में तमाम 'मर्दों' के साथ यादव के सुर में खींसे निपोरते दिखे। अंत में जब यादव ने ईरानी पर पुरुषवादी आंख तरेरी (मैं आपको अच्छी तरह जानता हूं!) तो उन्हें भी चुप हो जाना ही शालीन लगा होगा। विशेषाधिकारों से भरा जीवन जीने वाली ये दोनों महिलाएं भी सामाजिक यथार्थ को समझती ही होंगी। किसी को भी इस मुगालते में नहीं जीना चाहिए कि माननीय सांसदों की विकृत लैंगिक मानसिकता के उपरोक्त प्रदर्शन अपवादस्वरूप हैं।

फिलहाल महिला वकीलों की एक याचिका पर सर्वोच्च न्यायालय में निर्भया मामले के अभियुक्तों के वकीलों के विरुद्ध स्त्रियों को बलात्कार का जिम्मेवार ठहराने वाली उनकी अपमानजनक टिप्पणियों को लेकर सुनवाई चल रही है। इस बीच उत्तर प्रदेश में शासक दल के एक विधायक ने भी इन वकीलों जैसे ही तर्क सार्वजनिक रूप से महिला मुद्दों के मंच से व्यक्त किए हैं।

वरिष्ठ सांसद शरद यादव से लेकर गोवा के मुख्यमंत्री लक्ष्मीकांत पारसेकर तक, औसत भारतीय मर्द के नजरिए से, स्त्री के रूप-रंग को लेकर रोजमर्रा के कटाक्ष की ही बानगी नजर आते हैं। देखा जाए तो सर्वोच्च न्यायालय के सामने अचानक एक असाधारण संवैधानिक अवसर आ गया है- लैंगिक समानता की भाषा को कानूनी जामा पहनाने का। भारत सरकार को दिशा-निर्देश जारी करने का कि अनुसूचित जाति-जनजाति कानून की तर्ज पर, जो जातिसूचक अभिव्यक्तियों को दंडनीय ठहराता है, स्त्रियों के प्रति अपमानजनक एवं भेदभावपूर्ण लैंगिक संबोधनों आदि को भी अपराध करार देने के लिए नया कानून लाया जाए।

ऐसा नहीं है कि लैंगिक भाषा कानून अपने आप में कोई चमत्कारिक दवा सिद्ध होगा, कि समाज से इस तरह की विकृत मानसिकता देखते देखते छूमंतर हो जाएगी। पर जैसा कि अनुसूचित जाति-जनजाति के क्षेत्र में हुआ है, भाषाई मानकता का दबाव यहां भी अपना काम करेगा। कम से कम सार्वजनिक रूप से लैंगिक अभिव्यक्ति के अपमानजनक रूपों पर कानूनी शिकंजा तो कसेगा।

संस्कृति और आम संस्कृति में प्रचलित स्त्री की खिल्ली उड़ाने का मिजाज दुरुस्त करना पड़ेगा और मीडिया प्रचारित पुरुषवादी नैतिकता और स्त्री-विरोधी व्यावसायिकता को लैंगिक छानबीन के दायरे में लाया जा सकेगा। देखा जाए तो महिला क्षेत्र में ऐसे कानून का व्यावहारिक असर अनसूचित जाति-जनजाति क्षेत्र के कानून से भी ज्यादा दूरगामी होगा, क्योंकि भाषागत दुरुस्तगी की लगाम सार्वजनिक और पेशेवर स्पेस में ही नहीं पारिवारिक और निजी स्पेस में भी महसूस की जाएगी।

गिरिराज सिंह ने जहां विकृत भाषा को निजी बातचीत बताया और पार्टी के निर्देश पर एक रस्मी खेद प्रकट किया, शरद यादव ने न केवल स्वयं को लगातार सही ठहराया बल्कि उनका खुला समर्थन करने वालों की कमी भी नहीं रही। स्पष्ट है कि ये दोनों महानुभाव स्वयं भी एक लैंगिक बराबरी की भाषा के सामाजिक प्रचलन में न होने का शिकार हैं।

कौन नहीं जानता कि हम जिन शब्दों में स्वयं को व्यक्त करते हैं उसका प्रभाव हमारी मानसिकता के गठन पर कुछ न कुछ होता ही है। क्या केंद्र और राज्यों के महिला आयोगों को रूटीन आनुष्ठानिक वक्तव्यों से आगे बढ़ कर लैंगिक भाषा कानून का मसविदा सर्वोच्च न्यायालय में पेश नहीं करना चाहिए? क्या उन्हें इस तरह के अध्ययन नहीं करने चाहिए जिनके अंतर्गत लैंगिक बराबरी की भाषा गढ़ने पर निरंतर काम हो सके?

समाज में ही नहीं, सरकारी कामकाज में भी, यहां तक कि विधायिका और न्यायपालिका में भी, सर्वोच्च न्यायालय को भी महिला वकीलों की याचिका का निपटारा करने में ऐसे अध्ययनों का लाभ मिलना चाहिए। भारतीय संसद को भी अपने दो माननीय सदस्यों को उनके हाल पर नहीं छोड़ देना चाहिए और उनके जैसों के मार्गदर्शन के लिए भाषा और लैंगिकता के अंतर्संबंधों के शोध निष्कर्षों को खंगालना चाहिए।

भारत में गिने-चुने विश्वविद्यालय और शोध संस्थान ही ऐसे इक्का-दुक्का शोध-कार्य हाथ में लेते हैं और उनके निष्कर्ष व्यवहार में शायद ही कभी इस्तेमाल किए जाते हों। पश्चिमी विकसित देशों में अब ये अध्ययन आम हो चले हैं और इनके निष्कर्षों को सामाजिक और कानूनी मान्यता भी मिलती है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्कले की भाषाशास्त्री रॉबिन लाकौफ ने 1975 में प्रकाशित अपनी किताब 'लैंग्वेज ऐंड वुमंस प्लेस' में तीन सामान्य-सी लगती अवधारणाओं पर आधारित 'शिष्टता का सिद्धांत' प्रतिपादित किया था- स्वयं को लादो मत, सुनने वाली को विकल्प दो और सुनने वाली को अच्छा महसूस करने दो।

मैं गिरिराज सिंह या शरद यादव जैसों की बात नहीं जानता, जो जाहिर है इन अवधारणाओं पर खरे नहीं उतर सके, पर लैंगिक मुद्दों पर होने वाली कार्यशालाओं में मुझे नियमित रूप से बहुतायत ऐसे लोगों की ही मिलती है जिन्होंने अपने दांपत्य जीवन में एक बार भी, जी हां एक बार भी, अपनी पत्नी को कृपया या धन्यवाद जैसे सामान्य शिष्टाचार से संबोधित नहीं किया होता है। क्या उनके लिए कुछ नहीं किया जाना चाहिए?

स्त्री के साथ सत्ता शब्द आज भी अजीब क्यों लगता है? किसी स्त्री को लेकर जो शब्द इस्तेमाल होता है वह है 'सशक्तीकरण', न कि 'सत्ता'। राजनीति के शीर्ष पर पहुंचने के बावजूद सोनिया गांधी या स्मृति ईरानी को भी शालीनता के नाम पर चुप रहना पड़ता है! क्या एक दोयम दर्जे के मर्द राजनेता की भी क्षमता या स्वीकार्यता पर इसी तरह अपमानजनक ढंग से प्रश्नचिह्न लगाया जा सकता है? क्या वैसा करने पर सिंह और यादव स्वयं भी उसी अंदाज में अपमानजनक कटाक्षों के निशाने पर नहीं पहुंचा दिए गए होते? मुझे लगता है, जैसे राजनीति के शीर्ष पर विराजमान इन दो महिलाओं ने भारतीय मर्द की रूढ़ (स्टीरियोटाइप) मानसिकता को जबर्दस्त घुड़की पिलाने का ऐतिहासिक क्षण खो दिया हो। यह एक ऐसा क्षण था जिसमें सोनिया के ऊर्जाहीन पड़े नेतृत्व को गति प्रदान करने की क्षमता थी; जो स्मृति के आभाहीन मंत्रित्व में दीर्घकालिक चमक का माध्यम बन कर छा सकता था।

याद कीजिए 2014 के लोकसभा चुनाव में मोदी के अनवरत वाक-प्रहारों के नीचे छटपटाती कांग्रेस के लिए गिने-चुने याद रखने योग्य प्रसंगों में से एक को। भाजपा के स्टार प्रचारक ने प्रियंका गांधी को कृपा भरे शालीन अंदाज में अपनी बेटी जैसा बताया। कैमरे की आंखों में आंखें डाल कर प्रियंका ने उन्हें तुर्की-ब-तुर्की जवाब से निरुत्तर कर दिया था- मैं राजीव गांधी की बेटी हूं!

बहुत दिन नहीं हुए, भारतीय संसद का लैंगिक चरित्र उडविन की डाक्युमेंट्री पर लगाई गई सरकारी रोक के गिर्द हुई बहस में उजागर हो चुका है। जावेद अख्तर ने राज्यसभा में कहा कि बलात्कारियों के समर्थन में जैसी आपत्तिजनक भाषा डाक्यूमेंट्री में दोषियों और उनके वकीलों ने बोली है, वैसी कितनी ही बार वे सदन में भी माननीय सदस्यों के मुंह से सुन चुके हैं।

कई सदस्यों, विशेषकर महिला सदस्यों, की हताशा भी लगभग इसी तरह की भावनाओं में व्यक्त हुई। सभी के पास अपने-अपने तर्क, अनुभव और कहानियां रहीं, पर राज्यसभा में भी, जहां सत्तारूढ़ पार्टी अल्पमत में है, डाक्यूमेंट्री पर रोक को लेकर सरकार को कठघरे में खड़ा करने में किसी की दिलचस्पी नहीं थी। दरअसल, इस तरह पितृसत्ता को ही कठघरे में खड़ा किया जा सकता था, पर यह अवसर जाने दिया गया।

स्त्री को सहजता से सत्ता में प्रतिष्ठित होते देख पाना तो सबसे विकसित लोकतंत्र अमेरिका में भी संभव नहीं हो सका है। 2016 का वर्ष वहां नए राष्ट्रपति के चुनाव का वर्ष है और अनुमान है कि शायद एक बार फिर क्लिंटन बनाम बुश की नौबत आ जाए। रिपब्लिकन पार्टी की ओर से बुश परिवार का छोटा बेटा जेब बुश और डेमोक्रेट्स की ओर से बिल क्लिंटन की पत्नी हिलेरी क्लिंटन। अगर चुनी गईं तो हिलेरी अमेरिका की पहली महिला राष्ट्रपति होंगी।

बिल के अरकांसास का गवर्नर और बाद में अमेरिका का राष्ट्रपति रहने के लंबे दौर में हिलेरी को क्रमशः राज्य और देश की प्रथम महिला होने का सजावटी रुतबा प्राप्त था और किसी को उनके प्रति शालीन दिखने में दिक्कत नहीं थी। सन 2000 में पति के राष्ट्रपति पद से हटने के बाद जब उन्होंने न्यूयॉर्क से सीनेटर बनने का चुनाव लड़ा तो मानो मर्दवादी भाषाई तूफान बरपा हो गया। सौ सदस्यीय सीनेट के एक वरिष्ठ रिपब्लिकन नेता ने तिरस्कार से कहा- आने दो उसे हम हर रोज याद दिलाएंगे कि वह सौ में से महज एक है न कि कोई खास।

आज हिलेरी के मुंह से निकले एक-एक शब्द की इस हिसाब से भी व्याख्या की जा रही है कि उनकी भाषा में कितना स्त्रियोचित है और कितना पुरुषोचित। एक सीनेटर के रूप में और बाद में राष्ट्रपति ओबामा की विदेशमंत्री के रूप में उनके वक्तव्य झाड़-पोंछ कर लैंगिक खांचों में नए सिरे से फिट किए जा रहे हैं। अस्सी के दशक में ब्रिटेन में मार्गरेट थैचर को भी बतौर प्रधानमंत्री कहीं ज्यादा गहरी लैंगिक छानबीन से गुजरना पड़ा था। इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्री बनने पर भारतीय संसद में कहा गया कि अब अखबारों में सुबह एक आकर्षक तस्वीर देखने को मिला करेगी। ये आधुनिक दौर में विश्व राजनीति की सफलतम लौह महिलाएं हैं तो क्या?

मार्गरेट थैचर का मशहूर कथन कि कुछ कहलाना है तो पुरुष को बताओ, कुछ करवाना है तो स्त्री को, लैंगिक दुनिया में भी आज भी केवल स्त्री अध्येताओं के उद्धरणों में सम्मानजनक स्थान पाता है।

क्या मैं सुझाव दे रहा हूं कि सोनिया गांधी और स्मृति ईरानी समेत राजनीति की तमाम महिलाओं को 'स्त्रियोचित' शालीनता छोड़ देनी चाहिए? जी हां, मैं वास्तव में यही कह रहा हूं और इसके लिए शुरुआत लैंगिक भाषा कानून की राह प्रशस्त करने से की जा सकती है।

शाही समाजवाद का जश्न

विक्रम प्रताप

ऐसी ही शाही रंगरलियों की एक झलक हाल ही में चर्चा का विष्य बनी। उत्तर प्रदेश राज्य के मुखिया अखिलेश यादव के गृहक्षेत्र में सैफई महोत्सव के जश्न के नशे में सराबोर होकर तीन सौ करोड़ रुपये फूंक दिये जाते हैं। महोत्सव की आखिरी शाम को रंगीन और हसीन बनाने के लिए पुरानी राजसी व्यवस्था की तर्ज पर नर्तकों और नृत्यांगनाओं ने नाच-गाकर लोगों का मनोरंजन किया। उन्हें मुम्बई से बुलाया गया था। हेलीपैड पर उनके स्वागत के लिए सरकार के मंत्री पलकें बिछाये तैयार खड़े रहे। धक-धक नर्तकी का स्वागत एक सांसद (महोत्सव के अध्यक्ष) ने स्वयं किया। इस महोत्सव में नृत्य करने के लिये सलमान खान को लगभग 4 करोड़, माधुरी दीक्षित और मल्लिका शेहरावत को दो-दो करोड़ और अन्य छोटे कलाकारों को कई-कई लाख रुपये दिये गये, यानी एक रात को रंगीन बनाने के लिए चालीस करोड़ रुपये फूंक दिये गये।

खबरदार! होशियार! सर्वशक्तिमान राजा की शाही सवारी आज आपके शहर, गांव से होकर निकलेगी। हर आम-ओ-खास को हिदायत दी जाती है कि जब तक सवारी गुजरे, राजा के स्वागत में अपने सिर झुकाकर खड़े रहें।

अतीत काल में राजा-महाराजा जब कभी अपने रंगमहलों से निकलते थे, तो ढोल-नगाड़े बजाकर उनके कारिन्दे इसी तरह लोग़ों को डराते थे।

वक्त बदला। दौर बदलते गये दुनिया बदली और खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार तक बदल गये। यहां तक कि राजा-महाराजाओं की व्यवस्था भी बदल गयी। सिर्फ दो चीज़ें हैं जो नहीं बदल सकीं-आम जनता की नारकीय जिन्दगी और राजाओं जैसी रंगरलियां।

ऐसी ही शाही रंगरलियों की एक झलक हाल ही में चर्चा का विषय बनी। उत्तर प्रदेश राज्य के मुखिया अखिलेश यादव के गृहक्षेत्र में सैफई महोत्सव के जश्न के नशे में सराबोर होकर तीन सौ करोड़ रुपये फूंक दिये जाते हैं। महोत्सव की आखिरी शाम को रंगीन और हसीन बनाने के लिए पुरानी राजसी व्यवस्था की तर्ज पर नर्तकों और नृत्यांगनाओं ने नाच-गाकर लोग़ों का मनोरंजन किया। उन्हें मुम्बई से बुलाया गया था। हेलीपैड पर उनके स्वागत के लिए सरकार के मंत्री पलकें बिछाये तैयार खड़े रहे। धक-धक नर्तकी का स्वागत एक सांसद (महोत्सव के अध्यक्ष) ने स्वयं किया। इस महोत्सव में नृत्य करने के लिये सलमान खान को लगभग 4 करोड़, माधुरी दीक्षित और मल्लिका शेहरावत को दो-दो करोड़ और अन्य छोटे कलाकारों को कई-कई लाख रुपये दिये गये, यानी एक रात को रंगीन बनाने के लिए चालीस करोड़ रुपये फूंक दिये गये।

इसकी आलोचनाओं के जवाब में प्रदेश के मुखिया और मुखिया पिता ने महोत्सव के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि पिछले कई सालों से हम इसका आयोजन करते आ रहे हैं। इस महोत्सव से गांवों, गरीबों और किसानों का बड़ा फ़ायदा होता है। हालांकि उन्होंने यह नहीं बताया कि अब तक गांवों, गरीबों और किसानों को इसका क्या फ़ायदा मिला।

रामपुर में प्रदेश के मुखिया-पिता का जन्म दिन मनाने की एक बानगी देखिये। जन्म दिन के उपलक्ष में दो दिवसीय सांस्कृतिक कार्यक्रम में हंस राज हंस की गायकी और राष्ट्रीय कत्थक संस्थान द्वारा प्रस्तुत कत्थक की धूम रही। दूसरे दिन जयपुर से आये कव्वालों ने समां बांधा। लखनऊ से आये खास कारीगरों ने तीन दिनों की मेहनत से भव्य केक तैयार किया। जन्म दिन के काफ़िले का पांच किलोमीटर की यात्रा तय करने के लिये इंग्लैंड से विक्टोरियन बग्घी विशेष रूप से मंगवाई गयी, जिसमें दो सफ़ेद घोड़े जुते थे। सुक्रवार दोपहर बाद तीन बजे मुखिया-पिता और मुखिया इस शाही बग्घी में अपने चहेतों के साथ सवार हुए रास्ते में भव्य स्वागत के साथ शाही काफ़िला तीन घंटे की यात्रा के बाद राजसी रांगत से जन्मदिन मनाने जौहर विश्वविद्यालय पहुंचा, जहां रात 12 बजे जन्मदिन का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। विरोधियों का मुंह बंद करने के लिए तर्क दिया गया कि जब मायावती अपना जन्मदिन शाही तौर तरीकों से मना सकती है तो हम क्यों नहीं। जिस उत्साह और लगन से सरकार व सरकारी अमला दो दिनों तक सिर्फ अपने नेता को खुश करने के लिये रात-दिन मेहनत करता रहा, अगर उतनी ईमानदारी औरी कर्त्तव्यनिष्ठा से जनता की समस्याओं के लिए काम करें तो गरीबों को भी उनका रहनुमा दिखाई दें लेकिन आज ऐसा सोचना भी कोरा भ्रम है।

दूसरी ओर प्रदेश के किसान पिछले कई सालों से जैसी अपनी फसल का दाम लेने के लिये मिल मालिक, सरकार और न्यायालयों के दरवाजे खटखटाते हैं। उसके ऊपर कर्ज का बोझ साल दर साल बढता जा रहा है। साहुकार के कर्ज का दबाव, बिजली बिल जमा न हो पाने से ट्यूबवैल का कनेक्शन कटना और बैंक कर्ज न भर पाने से ज़मीन नीलामी का डर जैसी समस्याओं ने किसानों को चारों ओर से घेर रखा है। इतना ही नहीं, जिस फसल के भरोसे एक किसान बाप ने अपनी बेटी की शादी तय की थी, फसल का दाम न मिलने के चलते उसे शादी को तोड़ना पड़ा। सोचिए, ऐसे में क्या गुजरी होगी उनके दिलों पर। इन तमाम समस्याओं से त्रस्त किसान अपनी जीवन लीला समाप्त करने को मजबूर हैं।

मुजफ्फ़र नगर दंगे के पीड़ित बच्चे-बूढे शरणार्थी शिविरों में सर्दी, कुपोषण और बिमारियों से काल के गाल में समा रहे थे। धर्मोन्मादी अपनी राजनीतिक रोटियां सेंक रहे थे। ऐसे में सरकार के 8 मंत्रियों सहित 17 विधायक सरकारी खर्चे से विदेशों के दौरे पर चले गये। आलोचनाओं से घिरने के बाद इसे स्टडी टूर बताया, कहा गया कि ये टूरिस्ट विदेशों की संसदीय परम्पराओं की जानकारी हासिल करेंगे। इससे अपने देश की संसद और विधानसभाओं में समय-समय पर भड़क उठनेवाले माइक, कुर्सी और चप्पल युद्ध से जनता को मुक्ति मिलेगी।

कई साल पहले किसान कवि अदम गोण्डवी ने कहा था-काजू भुनी प्लेट में व्हिस्की गिलास में, आया है रामराज विधायक निवास में। आज भी रंगरलियों को देखकर विधायक निवास का यह चित्र बहुत फ़िका लगता है। 'समाजवाद' के झण्डाबरदारों का बयान करने के लिये गोरख पाण्डे का भोजपूरी गीत कहीं ज्यादा सटीक है-

समाजवाद बबुआ धीरे-धीरे आयी।
हाथी से आयी घोड़ा से आयी
बिरला के घर में समायी,
समाजवाद बबुआ धीरे-धीरे आयी।